www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
शुक्रवार 19 अप्रैल 2019

दैनिक जागरण
प्रकृति हमें संघर्षों और समस्याओं से जूझना सिखाती है

सीमा व्यापार पर रोक

आंतरिक सुरक्षा के लिए खतरे को देखते हुए पाकिस्तान के साथ नियंत्रण रेखा के जरिये होने वाले व्यापार पर रोक के फैसले को उचित ही कहा जाएगा, लेकिन यह एक सवाल तो है ही कि क्या इस आशय की सूचनाएं अभी मिलीं कि व्यापार की आड़ में पाकिस्तान से हथियार, नकली करेंसी, मादक पदार्थ आदि भेजे जा रहे थे? यह सवाल इसलिए, क्योंकि एक अर्से से यही माना जा रहा था कि पाकिस्तान भारत से व्यापार बहाने तबाही का सामान भेजने में लगा हुआ है। क्या यह अच्छा नहीं होता कि सीमा व्यापार को तभी बंद करने का फैसला कर लिया जाता जब पाकिस्तान को तरजीही राष्ट्र के दर्जे से वंचित किया गया था? यह काम जम्मू-कश्मीर में चुनाव प्रक्रिया शुरू होने के पहले भी किया जा सकता था, क्योंकि इसकी आशंका पहले दिन से थी कि पाकिस्तान घाटी में चुनाव प्रक्रिया को बाधित और प्रभावित करने का काम कर सकता है। यह ठीक नहीं कि इस आशंका के बावजूद पाकिस्तान से सीमा व्यापार बंद करने का फैसला तब लिया गया जब राज्य में मतदान के दो चरण निकल गए। कम से कम अब तो यह देखा ही जाना चाहिए कि जम्मू-कश्मीर में कोई ऐसा छिद्र शेष न रहे जिसका घाटी के अलगाववादी और आतंकवादी लाभ उठा सकें। इस मामले में गहन समीक्षा इसलिए जरूरी है, क्योंकि घाटी में पाकिस्तानपरस्त तत्वों की तादाद कम होती नहीं दिख रही है। आखिर इसका क्या मतलब पाकिस्तान के इशारों पर केवल उसके ही हितों के लिए काम करने वाला संगठन हुर्रियत कांफ्रेंस किसी न किसी रूप में अभी भी सक्रिय है? आखिर इस संगठन की सक्रियता से भारत के हितों की पूर्ति कैसे हो रही है?

जितना जरूरी यह है कि घाटी के पाकिस्तानपरस्त तत्वों के खिलाफ सख्ती बरती जाए उतना ही यह भी कि वहां के अमनपसंद और भारत समर्थक लोगों का भरोसा जीता जाए। कश्मीर के आम लोगों तक पहुंच बढ़ाने की आवश्यकता इसलिए है, क्योंकि वहां के नेताओं से अधिक उम्मीद नहीं है। क्या यह किसी से छिपा है कि महबूबा मुफ्ती अलगाववादियों वाली भाषा बोलने में लगी हुई हैं? यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है कि जम्मू-कश्मीर को पटरी पर लाने के लिए वहां जो भी कदम उठाए जाने हैं वे एक साथ उठाए जाएं-वे चाहे पाकिस्तान पर लगाम लगाने संबंधी हों या फिर घाटी के लोगों में भरोसा जगाने संबंधी। इसका कोई औचित्य नहीं कि रुक-रुककर छोटे-बड़े फैसले लिए जाते रहें। पाकिस्तान जब तक कश्मीर में दखल देने में समर्थ रहेगा तब तक वह भारत को तंग करता रहेगा। हैरानी नहीं कि सीमा व्यापार बंद होने के बाद वह जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा संबंधी अन्य कमजोरियों का लाभ उठाने की कोशिश करे। भारत सरकार को इससे भी परिचित होना चाहिए कि पाकिस्तान केवल कश्मीर में ही दखल देने की कोशिश नहीं करता, बल्कि वह शेष भारत में भी यही करने की कोशिश करता है। पाकिस्तानी प्रधानमंत्री इमरान खान का हालिया बयान इसका सुबूत है कि पाकिस्तान भारत की चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित करना चाह रहा है। कुछ समय पहले इमरान खान यह भी नसीहत दे रहे थे कि भारत में मुसलमानों के साथ किस तरह व्यवहार किया जाना चाहिए।

खेती के लिए

गाय को माता का दर्जा देने के दावे उस समय खोखले साबित होते हैं, जब सड़कों पर बेसहारा घूमते गोवंश दिखते हैं। हिमाचल प्रदेश में इस समय लाखों बेसहारा पशु सड़कों पर घूम रहे हैं। खेतीबाड़ी को इनके कारण काफी नुकसान पहुंचा है। कई क्षेत्रों में इनके आतंक के कारण लोगों ने खेती करनी छोड़ दी है। गोवंश के हमलों में लोगों के घायल होने का सिलसिला जारी है। कई बार ये सड़क हादसों का कारण भी बन रहे हैं। सरकारी स्तर पर बेसहारा पशुओं को आश्रय देने के दावे और घोषणाएं तो कई हुईं, लेकिन इस समस्या के समाधान की दिशा में ठोस प्रगति नहीं हो पाई है। गो अभ्यारण्य की योजना अभी कागजों में ही है। हर पंचायत में गोसदन खोलने की घोषणा भी जमीन पर नहीं उतर सकी है। समस्या तब बड़ी हो जाती है जब लोग समाधान के बारे में सोचना बंद कर दें। जहां प्रगतिशील सोच होगी, वहां समस्या का हल निकलना संभव है। कांगड़ा जिले के नगरोटा बगवां उपमंडल के पटियालकर गांव में लोगों ने पंचायत के सहयोग से बेसहारा पशुओं के लिए पंचायत भवन में बांस का अस्थायी बाड़ा बनाकर उन्हें सहारा दिया है। फिलहाल यहां 12 बेसहारा पशुओं को रखा गया है और उनके चारे-पानी की व्यवस्था ग्रामीण खुद कर रहे हैं। इससे खेत भी सुरक्षित हुए हैं और पशुओं को सहारा भी मिला है। बार-बार प्रशासन से गुहार लगाने के बावजूद कोई सकारात्मक कदम न उठाए जाने के बाद ग्रामीणों को यह पहल करनी पड़ी। यह किसी से छिपा नहीं है कि बेसहारा पशुओं के कारण हर साल करोड़ों रुपये का नुकसान प्रदेशभर में किसानों को उठाना पड़ता है। सरकारी स्तर पर दावों एवं घोषणाओं को धरातल पर उतारा जाए तो यह समस्या काफी हद तक दूर हो सकती है। लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं कि लोग हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाएं और सरकार का मुंह देखें। पटियालकर जैसी पहल कहीं भी हो सकती है। कृषि प्रधान राज्य में खेती से विमुख होकर किसानों का भला नहीं हो सकता। सरकारी तंत्र को भी योजनाओं को धरातल पर उतारने के प्रयासों में तेजी लानी होगी, ताकि खेती सुरक्षित रहे और कोई पशु बेसहारा न रहे।

खेती के मोर्चे पर नई चुनौती

देविंदर शर्मा

अंतरराष्ट्रीय व्यापार वार्ताओं में विभिन्न देशों की ओर से भारत की कृषि एवं निर्यात सब्सिडी पर लगातार सवाल उठना चिंताजनक है

आम चुनाव के इस दौर में जब खेती-किसानी के सवाल भी सामने आ रहे हैं तब इस पर भी ध्यान देने की जरूरत है कि विश्व व्यापार संगठन यानी डब्ल्यूटीओ यह चाह रहा है कि गेहूं, चावल, दलहन, कपास और गन्ने के खरीद मूल्यों में कटौती की जाए। अगर ऐसा हुआ तो किसानों की आफत और बढ़ सकती हैं। न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी एमएसपी और गन्ने जैसी फसलों के मामले में उचित एवं लाभकारी मूल्य यानी एफआरपी को घटाने को लेकर डब्ल्यूटीओ तब दबाव डाल रहा है कि जब नीति आयोग ने यह स्वीकार किया है कि बीते दो वर्षों में किसानों की वास्तविक आय में लगभग शून्य बढ़ोतरी हुई है। चीनी पर भारत की बढ़ती सब्सिडी को देखते हुए ऑस्ट्रेलिया और ब्राजील इस मसले को डब्ल्यूटीओ के विवाद निपटान पैनल में उठा रहे हैं जहां व्यापार संबंधी विवादों का समाधान होता है। उनके अलावा ग्वाटेमाला, यूरोपीय संघ, रूस, कोस्टारिका और थाईलैंड भी इस मामले में पक्ष बनना चाहते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो इन देशों ने भी भारत में चीनी पर दी जा रही सब्सिडी के खिलाफ मोर्चा खोलने की तैयारी कर ली है। एक दिलचस्प पहलू यह भी है कि जहां डब्ल्यूटीओ भारत में चीनी पर दी जा रही भारी सब्सिडी पर सवाल उठा रहा है वहीं गन्ना किसानों की बकाया रकम लगातार बढ़ती जा रही है। अकेले उत्तर प्रदेश में ही चीनी मिलों पर गन्ना किसानों का बकाया मार्च 2017 के 4,497 करोड़ रुपये से बढ़कर मार्च, 2019 में 12,700 करोड़ रुपये के स्तर पर पहुंच गया। चीनी सब्सिडी पर सात देशों के साथ चर्चा का पहला दौर अप्रैल के पहले सप्ताह में शुरू भी हो गया है। इससे पहले यूरोपीय संघ, रूस, चीन, जापान, ब्राजील, कनाडा, मिस्र, कजाकिस्तान, कोरिया, थाईलैंड, ताइवान और श्रीलंका जैसे 12 देश भारतीय निर्यात पर दी जाने वाली सब्सिडी को मिली अमेरिकी चुनौती के साथ लामबंद हो गए।

भारत की निर्यात सब्सिडी में वस्तु निर्यात पर दिए जाने वाले इंसेटिव्स यानी प्रोत्साहन भी शामिल हैं। डब्ल्यूटीओ के एग्रीमेंट ऑन सब्सिडीज एंड काउंटरवेलिंग मेजर्स (एसीएसएम) का हवाला देते हुए अमेरिका ने अनुमान लगाया कि भारत निर्यात के एवज में सात अरब डॉलर की सब्सिडी दे रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार वार्ताओं में भारत निशाने पर रहा है, लेकिन भारत की सब्सिडी पर सवाल उठाने वाले देशों की बढ़ती संख्या निश्चित रूप से चिंताजनक है। इसलिए और भी, क्योंकि डब्ल्यूटीओ के कुछ कदम भारत की दुखती रग को और ज्यादा छेड़ते हैं। डब्ल्यूटीओ में विभिन्न देशों के रवैये के अतिरिक्त कनाडा अमेरिका के साथ मिलकर भारत से बीते कुछ वर्षों में दलहन के एमएसपी में बढ़ोतरी को लेकर सवाल उठा रहा है। इस साल 12 फरवरी को अमेरिका ने कनाडा के साथ मिलकर डब्ल्यूटीओ की कृषि समिति में एक समन देकर भारत से पांच किस्म की दालों की कीमतों के रुख को लेकर जवाब तलब किया। पांच तरह की दालों चना, अरहर, मूंग, उड़द और मसूर को लेकर यह आरोप लगाया जा रहा है कि उनके समर्थन मूल्य को लेकर भारत ने डब्ल्यूटीओ की परिभाषित सीमा को पार कर लिया है। अमेरिका और कनाडा यह दलील दे रहे हैं कि दालों को लेकर भारत ने अपने समर्थन मूल्य को लेकर सही जानकारी नहीं दी है जो कृषि पर डब्ल्यूटीओ समझौते का उल्लंघन है। अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि और कृषि मंत्री ने अपने दावे में भारत पर यह आरोप लगाते हुए कहा कि भारत जानबूझकर सब्सिडी पर पर्दा डालकर ऐसे आंकड़े पेश कर रहा है जिनसे तस्वीर साफ नहीं होती। उनका दावा है कि दालों के लिए भारत 32 से 85 प्रतिशत तक मूल्य समर्थन दे रहा है। इस पर भारत का कहना है कि सभी किस्म की दालों के लिए उसका कुल सब्सिडी समर्थन 1.8 प्रतिशत के आसपास है और यह डब्ल्यूटीओ की दस प्रतिशत की स्वीकार्य सीमा से काफी कम है।

डब्ल्यूटीओ प्रावधानों के अनुसार किसी भी उत्पाद के लिए समर्थन मूल्य उसके समग्र उत्पादन मूल्य के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं दिया जा सकता। समर्थन मूल्य को भी इसमें सब्सिडी माना जाता है। इसे ऐसे समझ सकते हैं कि मान लीजिए कि चने का कुल 500 करोड़ रुपये का उत्पादन हुआ हो तो उसके लिए किसानों को 50 करोड़ रुपये से अधिक समर्थन मूल्य नहीं दिया जा सकता। जहां अमेरिका, यूरोपीय संघ, कनाडा और अन्य देश शिकायत कर रहे हैं कि सब्सिडी का आकलन करने के लिए भारत डब्ल्यूटीओ की पद्धति से इतर प्रक्रिया का उपयोग कर रहा है वहीं भारत की दलील है कि वास्तव में शिकायतकर्ता देश ही गलत पद्धति का इस्तेमाल कर रहे हैं। ये देश एमएसपी के आंकड़े लेकर उससे बाह्य संदर्भ मूल्य (ईएसपी) को घटा रहे हैं जिसे डब्ल्यूटीओ ने 1986-89 के आंकड़ों पर स्थिर किया हुआ है। फिर इस घटी हुई राशि को वे किसी विशेष फसल के उत्पादन की मात्रा से गुणा कर देते हैं। इससे बहुत ही बढ़े-चढ़े आंकड़े हासिल होते हैं। हकीकत यह है कि भारत फसल का समूचा उत्पादन ही एमएसपी पर नहीं खरीदता, बल्कि उसका एक हिस्सा ही खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए खरीदता है ताकि समाज के वंचित वर्गों की बुनियादी जरूरतें पूरी हो सकें। इसका सही तरीका यही होना चाहिए कि कुल उत्पादन से गुणा करने के बजाय उतनी ही फसल की मात्रा को गुणा किया जाए जिसे एमएसपी पर खरीदा गया हो। गेहूं और चावल के मामले में भी अमेरिका ने कई अवसरों पर भारत के आकलन को चुनौती दी है। वर्ष 2013-14 के आंकड़ों का हवाला देते हुए उसने कहा कि भारत ने वास्तव में गेहूं की 65 प्रतिशत फसल और धान की 77 प्रतिशत फसल को समर्थन मूल्य दिया, लेकिन उससे कम के आंकड़े दिए। वहीं भारत ने दावा किया कि इन दोनों फसलों के लिए एमएसपी का आंकड़ा 10 प्रतिशत की स्वीकार्य सीमा से कम ही था। डब्ल्यूटीओ में इस आक्रामक रुख का मकसद यह है कि कृषि एवं डेयरी उत्पादों के लिए और बड़ा बाजार तलाशा जाए। यह अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने उसी दिन स्पष्ट कर दिया था जब उन्होंने भारतीय इस्पात और एल्युमीनियम उत्पादों को सामान्य वरीयता तंत्र यानी जीएसपी के तहत मिले फायदों पर विराम लगा दिया था। इसके जवाब में भारत ने अमेरिका के 29 उत्पादों पर आयात शुल्क बढ़ाने का एलान तो किया, लेकिन उसमें भी शिथिलता सरकार की व्यापार नीति में कमजोरी को ही जाहिर करती है। आयात शुल्क बढ़ाने की मियाद अब दो मई तक इस उम्मीद के साथ बढ़ा दी गई कि शायद अमेरिका का रवैया कुछ नरम पड़ जाए।

बहरहाल डब्ल्यूटीओ के मौजूदा विवाद में भारत की सफलता इसी पर निर्भर करेगी कि वह अमेरिका को इसी मंच पर कैसे घेर पाता है जो अपने किसानों को भारी-भरकम सब्सिडी देता है। वास्तव में हम व्यापार कूटनीति में कमजोरी के परिणाम भुगत रहे हैं। अगर भारत ने घरेलू कृषि के हितों की रक्षा नहीं की तो देश की खाद्य सुरक्षा का दारोमदार उन्हीं किसानों के कंधों पर और बढ़ जाएगा जो पहले से ही मुश्किलों के कारण संकट में फंसे हुए हैं।

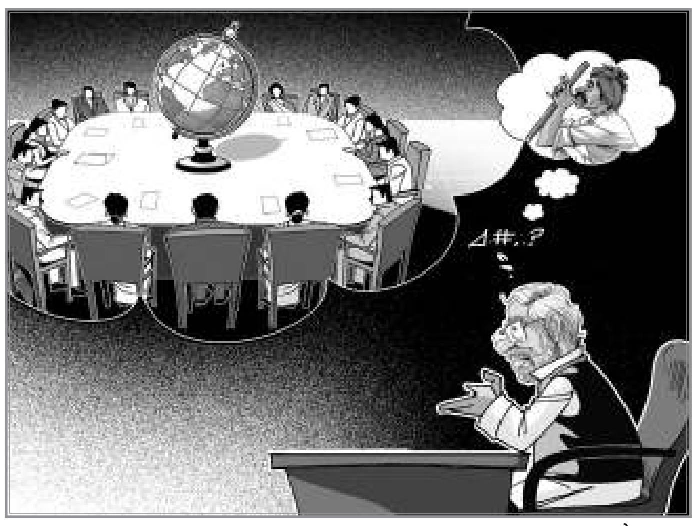

अवधेश राजपूत

(लेखक कृषि मामलों के विशेषज्ञ हैं)
response@jagran.com

वोट बैंक की छवि में कैद मुस्लिम

रामिश सिद्दीकी

जब कोई एक समाज गोलबंद होगा तो प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरा समाज भी गोलबंद होने की कोशिश करेगा

भारत में लोकतंत्र के महाकुंभ का आगाज हो चुका है। विभिन्न चुनावी मुद्दों के बीच जो मुद्दा हमेशा दिखता है वह है ध्रुवीकरण का। शायद ही कोई राजनीतिक दल हो जिस पर वोटों के ध्रुवीकरण का आरोप न लगता हो। इस आरोप के बीच मुस्लिम वोट का सवाल सदैव मौजूद रहता है। देश में कई राजनीतिक दल ऐसे हैं जो मुस्लिम वोट की अधिक चिंता करने के लिए जाने जाते हैं। क्या ऐसे दलों से कभी यह पूछा गया कि उन्होंने मुस्लिम समाज के हितों की रक्षा किस तरह की? आम धारणा है कि उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा-रालोद के बीच जो गठबंधन तैयार हुआ उसके केंद्र में मुस्लिम वोट बैंक ही है। इसकी पुष्टि मायावती के चुनावी भाषण से हो गई। इस गठबंधन की पहली रैली सहारनपुर जिले के एक छोटे शहर देवबंद में हुई। देवबंद विश्वभर में इस्लामी मदरसा दारुल उलूम के लिए प्रसिद्ध है जो मिस्र के अल-अजहर के बाद दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा इस्लामी मदरसा है। अब दारुल उलूम अपने फतवों के कारण अधिक चर्चा में रहता है, लेकिन आजादी की लड़ाई में इस संस्था की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। दारुल उलूम के संस्थापक केवल उलमा नहीं थे, बल्कि वे स्वतंत्रता सेनानी भी थे जिन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ाई लड़ी। भारत के विभाजन की जब विकट स्थिति पैदा हुई तब यहीं के उलमा जिन्ना की बांटने वाली विचारधारा के सामने एक दीवार बनकर खड़े रहे। यहां के उलमा ने कहा कि राष्ट्र की बुनियाद धर्म नहीं बन सकती। वे मानते थे कि राष्ट्रवाद अलग है और धर्म को मानना अलग। कोई भी धर्म अपने राष्ट्र के प्रति कर्तव्य के रास्ते में बाधा नहीं होता।

दारुल उलूम का जिक्र इसलिए, क्योंकि जिस संस्था ने स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी और अन्य स्वतंत्रता सेनानियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भारत की आजादी की लड़ाई लड़ी वह अब चुनावी राजनीति का जरिया सा बन गया है। प्रत्येक चुनावों में देवबंद का इस्तेमाल दो समुदायों के बीच भेदभाव पैदा करने के लिए किया जाता है। भारत के संविधान ने इस देश के प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार दिया है कि वे जिस भी राजनीतिक दल को चाहते हैं, उसे वोट दें, लेकिन मुस्लिम समाज किसी एक दल या गठबंधन के पक्ष में मतदान करने के लिए जाना जाता है। लोकतंत्र में मतदान विशेष समुदाय की भलाई के लिए नहीं होता। यह देश की भलाई के लिए होता है, लेकिन मुस्लिम समुदाय के सामने यह स्थिति पैदा कर दी जाती है कि वह अपनी और अपने मजहब की सुरक्षा की चिंता करते हुए वोट दे। इस चक्कर में यह समाज अपने ही अन्य जरूरी मुद्दों की अनदेखी कर देता है। परिणाम यह होता है कि मुसलमानों के वोट का लाभ इस समाज का ठेकेदार बनने वाले लोग उठा लेते हैं। सरकारें देश की सुरक्षा, प्रशासनिक और अन्य तमाम मामलों के प्रबंधन के लिए चुनी जाती हैं, वे लोगों की सोच के स्तर को बदलने के लिए नहीं चुनी जातीं। पिछले कई दशकों से मुस्लिम समाज को एक ही झूठ पर वोट देने के लिए उकसाया जाता है कि अगर किसी विशेष दल के लोग सत्ता में आए तो उनके लिए जीवन मुश्किल हो जाएगा और यह चुनाव उनके अपने अस्तित्व को बचाने की लड़ाई है। जब कुछ राजनीतिक दल मुस्लिम समाज और अन्य समाज को लेकर अपना चुनावी गणित बैठाते हैं तो इसे सोशल इंजीनियरिंग का नाम दे दिया जाता है और जब यही काम कोई दूसरा करता है तब उसे ध्रुवीकरण का नाम दे दिया जाता है। यह स्वाभाविक है कि जब कोई एक समाज गोलबंद होगा तो प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरा समाज भी गोलबंद होने की कोशिश करेगा या फिर कोई अन्य उसे गोलबंद करने की कोशिश करेगा।

इस्लामिक धार्मिक ग्रंथों में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि मुसलमानों का नेता केवल मुस्लिम ही हो सकता है। दरअसल इस्लाम में राजनीतिक व्यवस्था को लेकर कहीं कोई चर्चा ही नहीं है। विश्वभर में इस्लाम की जैसी राजनीतिक छवि बनी है उससे पूरी दुनिया में लोग यह सोचने पर मजबूर हो गए हैं कि क्या इस्लाम ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की बात करता है जहां इस्लाम के मानने वालों के हाथ में सत्ता होनी चाहिए? हजरत यूसुफ के जीवन का स्मरण आवश्यक है। हजरत ने पैगंबर से अपने लिए कभी कुछ नहीं मांगा, न ही किसी के लिए अपने मन में कभी द्वेष रखा। उनकी इसी पवित्रता के कारण मिस्र के उस समय के शासक फिरौन के दरबार में उन्हें एक राजनीतिक पद पर नियुक्त किया गया। एक राजनीतिक पद पर रहते हुए उन्होंने हमेशा न्याय और करुणा के साथ फैसले किए। उन्होंने कभी भी इस्लामी शासन स्थापित करने या अपने गैर मुस्लिम राजा को हटाने के लिए आवाज नहीं उठाई। उन्होंने अपने पद को बचाने के लिए अपने लोगों को नकारात्मक सोच में कभी नहीं झोंका जो आज हम भारत के कथित मुस्लिम हितैषी नेताओं में देखते हैं।

भारत में लगभग 60-70 हजार पारसी हैं, जो पीढ़ियों से यहां रह रहे हैं, लेकिन उनमें से किसी ने कभी नहीं कहा कि हम सुरक्षित नहीं हैं या हमारा धर्म खतरे में है। पारसियों के अलावा भी भारत में अलग-अलग धर्मों के लोग हैं जो संख्या में बहुत कम हैं, लेकिन कभी उनमें यह सोच नहीं देखी गई कि वे भारत में असुरक्षित हैं। दूसरी तरफ मुस्लिम समुदाय है जो भारत में 18 करोड़ से भी अधिक है, फिर भी लगातार असुरक्षा के साये में जीता है। आखिर उन्हें खतरा किससे है और क्यों? क्या उन्होंने कभी महसूस किया कि उनकी इस सोच का वास्तविक लाभ किसको मिल रहा है? एक समुदाय जो इतनी बड़ी तादाद में है, उसे खतरा कैसे महसूस हो सकता है? इस सोच का एक बड़ा कारण समाज में फैली अशिक्षा और सही नेतृत्व का अभाव है। धार्मिक और राजनीतिक नेता बड़ी संख्या में मदरसों का निर्माण और समर्थन तो करते हैं, लेकिन देश में उच्च शिक्षा संस्थानों का निर्माण कैसे हो और मुस्लिम युवा उच्च शिक्षा में आगे कैसे आएं, इसकी चिंता नहीं करते। यह चिंता इसलिए नहीं की जाती, क्योंकि मुस्लिम समाज ने अपनी छवि एक वोट बैंक की बना रखी है। आज मुस्लिम समाज को ऐसे नेतृत्व की जरूरत है जो उसमें कर्तव्य के प्रति जागरूक बनने की सोच विकसित कर सके। सच्चर समिति जैसी दर्जनों समितियां भी किसी समुदाय को बेहतर नहीं बना सकतीं, अगर वह समाज वोट बैंक की अपनी छवि को तोड़ने के लिए आगे नहीं आता।

(लेखक फोरम फॉर पीस एंड सस्टेनेबल डेवलपमेंट के अध्यक्ष हैं)
response@jagran.com

ऊर्जा

साहस ही संजीवनी बूटी

रामकथा का प्रसंग है कि जब माता सीता की खोज की बात आई और श्रीराम के पक्ष के अनेकानेक योद्धा लंका जाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे तब हनुमान जी में साहस का संचार करने के उद्देश्य से जांबवंत ने 'कवन सो काज कठिन जग माहीं, जो नहिं होई तात तुम्ह पाहीं' कहा। इतना सुनने के बाद हनुमान जी में उत्साह जागृत हुआ तो उन्होंने असंभव को संभव कर दिया। इस प्रसंग का मूल उद्देश्य यही है कि जब किसी व्यक्ति का साहस मृतप्रात हो जाता है तो उसकी पूरी काबिलियत लुप्त हो जाती है। जीवन में किसी भी चुनौती से मुकाबला करने के लिए आंतरिक हिम्मत जादू के समान है। अब सवाल उठता है कि यह आत्मबल कैसे मिलेगा और कैसे लुप्त हो जाता है। आत्मबल मिलने का सबसे उत्तम उपाय है ग्रंथों, इतिहास आदि की पुस्तकों में उन महापुरुषों का जीवन चरित्र पढ़ते रहना, जो अभाव और विषम परिस्थिति में भी अपने लक्ष्य को हासिल करने में सफल रहे। इसी के साथ उन लोगों के साथ संबंध बनाना चाहिए जो परिश्रम, सूझबूझ से सफलता हासिल करने में विश्वास रखते हैं। बहुत से लोग नकारात्मक तरीके से किसी भी क्षेत्र में उपलब्धि के पक्षधर हैं, उनसे दूर रहना चाहिए, क्योंकि कोई एक व्यक्ति गलत उपाय से सफलता पा गया हो तो संभव नहीं कि यह फॉर्मूला सब पर सटीक लागू हो। प्रायः गलत तरीके से सफल व्यक्ति संकट में भी पड़ता है।

गलत कार्यों से सबसे पहले भय मन में डेरा जमाता है। डरा हुआ व्यक्ति अपनी सारी क्षमता गंवा बैठता है। डर के साथ किए कार्यों में पूरी सफलता नहीं मिलती। जरा सी विपरीतता आई नहीं कि शरीर कांपने और थरथराने लगता है। मन में ग्लानि होती है। ग्लानि से आत्मबल तो कमजोर होता ही है, साथ ही शारीरिक स्तर पर बीमारियां भी धर दबोचती हैं। अतः विद्वानों और ऋषियों की कही बात कि 'धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया और चरित्र गया तो सब कुछ गया' को शतप्रतिशत सही मानते हुए सकारात्मक रास्ते पर चलना चाहिए। फिर तो हनुमान जी की तरह संजीवनी बूटी भी हाथ लगेगी और विषम लंका जैसी नकारात्मकता को जला देने का सामर्थ्य भी प्राप्त होगा। सकारात्मक तरीके से मिली सफलता से संतोष के साथ आनंद भी मिलेगा।

सलिल पांडेय

हिंदी समाज और रंगमंच

हिंदी समाज ऊपर से भले ही एकरूपी समाज दिखता हो, लेकिन इसके भीतर विविध स्तर हैं। वर्ग और वर्ण के अतिरिक्त बहुत सारी सामाजिक प्रक्रियाएं हिंदी समाज के भीतर की हलचल को निर्धारित करती हैं। इसको संचालित करने वाले कई सूत्रों में से सबसे हावी है राजनीति, जिसमें हिंदी समाज कुछ अधिक जागरूकता दिखाता है। और सबसे उपेक्षित है संस्कृति जिसमें हिंदी समाज कम रुचि दिखाते हुए प्रतीत होता है, दिखाता भी है। संस्कृति जब हम यहां कर रहे हैं तो यह लोकप्रिय संस्कृति, दैनंदिन संस्कृति से अलग है जिसके रूपों सिनेमा, टेलीविजन, फैशन आदि में हिंदी समाज की रुचि अत्यंत है। संस्कृति से हमारा तात्पर्य कला, साहित्य, रंगमंच से है जिसके तरफ हिंदी समाज बहुत तवज्जो नहीं देता और भूमंडलीकरण के बाद यानी नब्बे के दशक के आर्थिक उदारीकरण के बाद संस्कृति से अलगाव की प्रक्रिया भी तेज हुई है। हिंदी समाज में बहुत पहले से विविध प्रकार की रंगमंचीय अभिव्यक्तियां मौजूद रही हैं, चाहे वे आधुनिक हों या लोक, लेकिन अभी का हिंदी समाज रंगमंच की विविध अभिव्यक्तियों को पहचान पाने में ही सक्षम नहीं है। यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि हिंदी समाज और रंगमंच को दो अलग-अलग समूह मानें तो उन दोनों में आवाजाही करने वाला समूह संख्या में बहुत कम है, इसलिए हम अक्सर संकट की चर्चा करते हैं। जब समाज को कुछ फर्क नहीं पड़ता रंगमंच से तो रंगमंच ने भी अपना समाज बना लिया है और उसकी अधिकांश गतिविधियां उसी में होती रहती हैं। हाल ही में किसी ने एक सवाल किया कि रंगमंच से समाज में कोई बदलाव आ सकता है क्या? मैंने इसका स्पष्ट उत्तर दिया कि समाज और रंगमंच का वह संपर्क जो पूर्व आधुनिक समाज में था कायम हो जाए तो बदलाव आ सकता है, लेकिन अभी तो संपर्क ही नहीं के बराबर है।

फिर से

आर्थिक उदारीकरण के लागू होने के बाद रंगमंच से हिंदी समाज के अलगाव की प्रक्रिया भी तेज हुई है

हिंदी प्रदेश के रंगमंच की सबसे बड़ी चिंता है आर्थिक कि आर्थिक दबावों के बीच रंगमंच कैसे सस्टेन करेगा? क्या सरकारी अनुदान से? वह पर्याप्त नहीं पड़ता, ऐसा रंगकर्मी मानते हैं और अनुदान के आलोचक कहते हैं कि इससे रंगमंच की जनपक्षधर प्रवृत्ति को कायम नहीं रखा जा सकेगा। कॉरपोरेट अभी रंगमंच की तरफ अधिक संख्या में नहीं आ रहे। बिड़ला समूह ने 'आद्यम' के रूप में पहल किया है प्रस्तुतियों को मंच और आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराने का, लेकिन इसकी गतिविधि मुंबई तक सीमित है। महिंद्रा भी मेटा फेस्टिवल के आयोजन तक सीमित है। कॉरपोरेट फंडिंग के साथ आशंका यह भी है कि वे अपने विज्ञापन और एजेंडा से रंगमंच को प्रभावित करेंगे। केवल दर्शकों पर निर्भरता अभी दूर का स्वप्न है। बहुत सारे रंग केंद्रों पर यह सहमति ही नहीं बन पाई है कि प्रस्तुतियां टिकट लगा कर हों। टिकट खरीदने की आदत लगाना रंगकर्मियों की ही जिम्मेदारी है। इसके लिए प्रस्तुति का स्तर भी बढ़ाना होगा, क्योंकि दर्शक अपने कीमत की वापसी चाहेंगे। हिंदी रंगमंच का स्वरूप अरसे से शौकिया रहा है तो आर्थिक आत्मनिर्भरता चिंता में नहीं रही है, लेकिन अब रंगकर्म को एक फुलटाइम पेशे के रूप में अपनाने वाले लोग बढ़ रहे हैं तो सस्टेनेबल मॉडल की खोज होने लगी है जो ठीक भी है।

(साभार: रंगविमर्श में अमितेश)

मेलबाक्स

आकलन करने में जल्दबाजी

खैरात बनाम अधिकार की राजनीति शीर्षक से लिखे अपने लेख में प्रदीप सिंह ने मोदी सरकार की उन नीतियों का विश्लेषण किया है जो भाजपा के लिए इस बार के लोकसभा चुनाव में संजीवनी साबित हो सकती हैं। मेरा मानना है कि लेखक ने आकलन करने में थोड़ी जल्दबाजी की है। यह तो 23 मई को लोकसभा चुनाव के नतीजों के आने के बाद ही पता चले पाएगा कि देश का मतदाता मोदी सरकार की नीतियों से खुश था या नाखुश, क्योंकि लोकतंत्र में जनभावना को समझना मुश्किल होता है। लोकतंत्र में हर चुनाव में ऊंट किस करवट बैठ जाए कुछ कहा नहीं जा सकता, लेकिन जिस भी पार्टी ने गलत नीतियां अपनाईं या तानाशाह की राह चलने की कोशिश की उसे आमजन ने चुनाव में करारा झटका भी दिया है। लोकतंत्र में जो भी राजनीतिक पार्टी सत्ता में आती है उसका फर्ज बनता है कि वह बिना किसी स्वार्थ या भेदभाव के लोकसेवा की भावना से काम करे, पर आजकल देखा जा रहा है कि अधिकांश सरकारें सेवा भावना से नहीं, बल्कि अहसान की भावना से काम कर रही हैं। वर्तमान सरकार भी इससे अलग प्रतीत नजर नहीं आ रही है। माना कि कांग्रेस ने लंबे समय तक राज करने के बाद भी देश की बुनियादी समस्याओं का समाधान नहीं किया, लेकिन लेखक से सवाल है कि क्या मोदी सरकार में बेरोजगारी जैसी समस्याएं दूर हो गई हैं?

raju09023693142@yahoo.com

राजनीति में अच्छे लोगों की कमी

पूर्णता एक भ्रम है, कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है। कोई भी दल अपने आप में संपूर्ण नहीं है। हर दल की अपनी समस्याएं हैं और अपनी खूबी। हर दल में कुछ अच्छे व्यक्ति हैं कुछ खराब। चुनाव अक्सर आदर्शों और विचारधाराओं के आधार पर लड़ा जाता है, जबकि वास्तविक रूप से यह चरित्र और अच्छाई के आधार पर लड़ा जाना चाहिए, किंतु वर्तमान में विभिन्न दलों में धनबल, जनबल और बाहुबल नेताओं की उम्मीदवारी का आधार बना हुआ है, जिससे अच्छे लोग राजनीति से दूर हो गए हैं। राजनीति में अच्छे लोगों की कमी हर कोई महसूस कर रहा है, किंतु यह विडंबना ही है कि सभी दलों में ऐसे लोगों की भरमार है। जनता किसे चुनेगी? ये तो आने वाला समय ही बताएगा, परंतु दो बुरे लोगों में से कम बुरे का चुनाव करना लोकतंत्र की नियति बन चुकी है। सब एक ही थाली के चट्टे-बट्टे हैं, कोई अगर एक अंगुली सामने वाले पर उठा रहा है तो चार अंगुलियां उसकी तरफ भी उठ रही हैं। विभिन्न माध्यमों से बेबस जनता को चुनाव में मतदान के लिए प्रेरित किया जा रहा है, लेकिन न तो उम्मीदवारों के चयन में और न ही मुद्दों के चुनाव में उनके मत को महत्व दिया जाता है, फिर जनता किसे मतदान करे? अधिकांश उम्मीदवार दागी हैं, बागी हैं, आचार संहिता का उल्लंघन कर लोकतंत्र के अपराधी हैं। सब जानते हैं चुनाव पैसों के दम पर जीता जाता है। कोई नेता ऐसा नहीं जो अपनी साफ छवि या काम के बलबूते बिना पैसा पानी की तरह बहाए, चुनाव जीतने का दंभ भर सके। अगर ऐसा नहीं है तो किसी को प्रचार की क्या जरूरत है। कम से कम जो पार्टियां सत्ता में रही हैं। वे तो अपने काम के आधार पर ही जीत सकती हैं।

sonimohit895@gmail.com

खत्म होती मर्यादा

राजनीति में लगता है कि मर्यादा नाम की चीज खत्म हो गई है। व्यक्ति जो चाह रहा है दूसरे के बारे में बोल दे रहा है। कहीं सोच-विचार ही नहीं है। इन लोगों के अंदर शिष्टाचार नाम की कोई चीज नहीं रह गई है। अगर हम अपने ही प्रधानमंत्री के लिए अपमानजनक भाषा का प्रयोग करेंगे तो दूसरे देश के लोग भी सम्मान नहीं करेंगे। इसलिए हमारा इतना तो कर्तव्य बनता है कि देश के प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति का सम्मान करें।

नीरज कुमार पाठक, नोएडा

कुर्सी पर नजर

दिनांक 18 अप्रैल के अंक में प्रदीप सिंह का लेख, खैरात बनाम अधिकार की राजनीति, पढ़ा। लेखक ने सही कहा कि आम आदमी के लिए जिस तरह की सोच मोदी सरकार रखती है वैसी सोच ना कांग्रेस की है न ही अन्य विपक्षी दलों की, इसलिए उन्हें 72 हजार रुपये देने, 12वीं तक मुफ्त शिक्षा, मुफ्त इलाज देने एवं किसान की आय चौगुनी करने जैसे झूठे वादे करने पड़ रहे हैं। आखिर पहले तो उन्हीं की सरकार थी तब ये सब क्यों नहीं किया। अब महागठबंधन किया है तो वह भी लक्ष्य विहीन। उनका लक्ष्य केवल कुर्सी है।

सतीश त्यागी काकड़ा, इंदिरापुरम, गाजियाबाद

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं न हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय ा ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।